भक्तिकाल के प्रमुख कवियों का पुनर्मूल्यांकन

डॉ. ओम प्रकाश त्रिपाठी
प्रा. लता शिरोडकर

श्रीमती पार्वती बाई चौगुले महाविद्यालय, मडगाँव, गोवा

विद्या प्रकाशन
सी, 449, गुजैनी, कानपुर – 22

ISBN : 81-88554-00-6

मूल्य : तीन सौ रुपये मात्र

पुस्तक	:	भक्तिकाल के प्रमुख कवियों का पुनर्मूल्यांकन
लेखक	:	डॉ. ओम प्रकाश त्रिपाठी एवं प्रा. लता शिरोडकर
प्रकाशक	:	विद्या प्रकाशन सी-449, गुजैनी, कानपुर – 22 दूरभाष : (0512) 2285003
संस्करण	:	प्रथम, 2004 ई.
मूल्य	:	300.00
शब्द सज्जा	:	आशीष ग्राफिक्स, पी. रोड. कानपुर
मुद्रक	:	अजित आफसेट, रामबाग, कानपुर

Bhaktikal Ke Pramukh Kaviyon Ka Punrmulyankan

By : *Dr. Om Prakash Tripathi & Prof. Lata Shirodekar*

Price : Rs. Three Hundred only

सूरदास की गोपियाँ और आधुनिक नारी

- रोहिताश्व

कहा जाता है कि अतीत के वस्त्रों, आभूषणों और रूपाकारों से वर्तमान का श्रृंगार नहीं किया जा सकता है पर अतीत की क्लासिकल-वैभवशाली सृजन परम्परा हमें जीवन और लोक व्यवहार की एक अभिनव दृष्टि तो प्रदान करती है। पर इस अभिनव दृष्टि के लिए पाठक या अनुसंधानकर्ता का अपना एक वैचारिक दृष्टिकोण विजन आवश्यक तत्व होता है चाहे वह भाववादी-तत्ववादी हो अथवा भौतिकवादी-यथार्थवादी विजन-दृष्टिकोण।

वास्तव में यथार्थवादी-विजन से, वर्तमान के नेत्रों से अतीत की क्लासिकल एवं महत्त्वपूर्ण रचनाओं का विश्लेषण अगर हमें एक ऐन्द्रजालिक लोक में ले जाता है तो वर्तमान में उस कृति की प्रासंगिकता और लोकधर्मिता की पहचान एक जरूरी कार्य बन जाता है। वैसे भी वाल्टर बेंजामिन ने अतीत के साहित्य की आलोचना करते समय इस बात पर बल दिया है कि अतीत के अनुभव के रूप में उसका मूल्यांकन करना अपर्याप्त है, वर्तमान के रूप में उसका मूल्यांकन और विश्लेषण आवश्यक है।

सूरदास ने अपने ऐतिहासिक-सांस्कृतिक दौर में एक काल्पनिक मनोराज्य (यूटोपिया) काव्य-माध्यम से रचा है जो प्रेमभावना, रसमग्नता, हार्दिक मनोभाव, उत्कट-इच्छाओं के एक रहस्यमय लोक के साथ-साथ जीवनानुभवों का विस्मृत लौकिक भाव भी प्रस्तुत करता है। आध्यात्मिक एवं लौकिक दृष्टिकोण से राधा-कृष्ण, गोपी-गोपीवल्लभ सम्बन्ध पर अनेकानेक रचनाकारों ने विचार किया है। जिसकी प्रेरणा महाभारत, हरिवंशपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, पद्मपुराण, जयदेव के गीत गोविन्द और विद्यापति के पदों से ली गयी है। श्रीमद्भागवत में कृष्ण के चरित्र और विभिन्न लीलाओं का जो विशद् चित्रण मिलता है वह अन्य पुराणों में दुर्लभ है। अतः कहना न होगा कि भागवत में चित्रित कृष्ण का लीलात्मक स्वरूप लीलारस-रसिक सूरदास की भक्तिभावना के अनुकूल होने के कारण सहज ही सूर की अनुभूति का विषय बन गया है।[1]

सूरदास की काव्य सृजना जहाँ पूर्ववर्ती कृष्ण परम्परा से प्रभाव ग्रहण करती है वहाँ अन्याय परवर्ती रचनाकारों पर भी कलागत प्रभाव डालती है। कारण कला-साहित्य और सौन्दर्यशास्त्र के विकास में ऐतिहासिक अनवरता होती है। हर एक ऐतिहासिक दौर का आधार Base दूसरे दौर के आधार में प्रयाण

करते वक्त उसके उपयोगी तत्वों को ग्रहण कर लेता है और युगानुकूल नये मूल्य बोध से उसने संशोधन व परिवर्द्धन कर लेता है। दर्शन, कला, नीति और धर्म की विचारधाराओं में वह ऐतिहासिक धारावाहिकता historical continuity और भी अधिक पायी जाती है। जैसे राधा-कृष्ण की प्रणय-लीलाओं की परम्परा जयदेव, विद्यापति, सूरदास, नंददास, मीराँबाई, देव, बिहारी, भारतेन्दु, हरिऔध और जानकी वल्लभ शास्त्री के काव्य में एक क्रम को ही सूचित करती है। यद्यपि जयदेव, विद्यापति, सूरदास, बिहारी, हरिऔध और धर्मवीर भारती की राधाएँ भिन्न-भिन्न ऐतिहासिक विकासों के दौर से गुजरी हैं फिर भी उनमें एक वंशानुगत बंध hereditatary bound है। अतः कला के विकास में निश्चित ऐतिहासिक धारावाहिकता के साथ-साथ वंशानुगत बंध भी होता है। प्रत्येक ऐतिहासिक युग की कला सिद्धान्त में भिन्न होकर भी (वंशानुगत बंध) के कारण 'जातीयता की विलक्षणताओं को अंगीकार करती चलती है।[2] वैसे मध्ययुगीन दौर के राधा-कृष्ण, गोपी-गोपीवल्लभ सम्बन्धी सांस्कृतिक 'आधार' निःसन्देह आधुनिक दौर के आधार सम्बन्धों में भिन्न प्रमाणित होते हैं। अतः राधा और गोपिकाओं का चारित्रिक वैशिष्ट्य हमारे रागात्मक सम्बन्धों, रागानुभूतियों एवं आन्तरिक मनोलोक के सम्बन्धों का पुरातन एवं अभिनव आधार भी है।

भारतीय जनमानस में विशेषकर हिन्दू समाज में कृष्ण पूर्णावतार हैं और उनकी लीलाएँ राधा एवं गोप-गोपिकाओं के वृहत्तर जीवन से अनुस्यूत हैं। जिसका स्पेस, लोक, भूगोल ब्रज, गोकुल, मथुरा एवं द्वारका तक सीमित नहीं है बल्कि सम्पूर्ण भारत के विभिन्न प्रदेशों-भाषाओं की मिथकीय-पौराणिक चेतना एवं लौकिक प्रेम भावना तक परिव्याप्त है।

राधा और कृष्ण, गोप-गोपियों और गोपी वल्लभ की लीला भारतीय स्थापत्य, संगीत, चित्रकला और काव्यकला की अनथक कोष है। चीरहरण-प्रसंग, रासलीला-वैभव, कालिया नाग दमन, कृष्ण का मथुरा प्रवास, राधा का सौन्दर्य-माधुर्य, गोपियों का उपालम्भ, गोपियों का विरहिणी रूप चित्रण भला हिन्दुस्तान की किस भाषा या प्रान्त की अन्तश्चेतना का आधार विषय नहीं रहा है। हमारे अधिकांश बिम्ब, प्रतीक एवं मिथक उसी ब्रज-गोकुल, मथुरा-द्वारका के स्पेस-थल, काल-परिवेश एवं भूगोल की सरहदों में व्याप्त है। जिसका एक अतीन्द्रिय सादृश्य लोक भी है जिसकी विवेचना करना हमारा अभीष्ट नहीं है कारण द्वैतवाद हो या अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैत हो या द्वैताद्वैत, वे भाववादी-तत्ववादी चिन्तन और कल्पनालोक की आधार-भीति है। हमारा सम्बन्ध इसी यथार्थ लोक में जीने वाले मानस लोक से है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में चरागाह संस्कृति 'पेस्टोरल कल्चर' से तात्पर्य अर्थात् कृषक -जीवन के अनुषंग रूप में यथार्थ जीवन की अनुभूति से है।

सूरदास की गोपियाँ और आधुनिक नारी के प्रसंग में हम यही कहना चाहेंगे कि श्रीकृष्ण के लौकिक और अलौकिक, मानवीय और दिव्य रूप में हमें लौकिक व मानवीय रूप ही श्रेयस्कर जान पड़ता है। वे सामाजिक विकास के कृषि-युग के दौरान सार्वभौम संकल्प के तत्कालीन युग की सूत्रात्मा प्रतीत होते हैं। श्रीकृष्ण के जीवन में इच्छा, ज्ञान और क्रिया का चरमोत्कर्ष दिखलायी पड़ता है। वे भारतीय चिन्तन परम्परा में बुद्धिवाद और आनंदवाद के पूर्ण समन्वित रूप प्रतीत होते हैं। कृष्ण और राधा का प्रेम गोपी और गोपीवल्लभ का प्रेम वृन्दावन के सुखमय जीवन के बीच हास-परिहास, गोचारण के बीच स्वाभाविक विकास में सूरदास के यहाँ द्रष्टव्य है। उनके प्रेम को हम जीवनोत्सव के रूप में पाते हैं। सहसा उठ खड़े हुए तूफान या मानसिक विप्लव के रूप में नहीं, जिनमें अनेक प्रकार के प्रतिबन्धों और विघ्न बाधाओं को पार करने की लम्बी-चौड़ी कथा खड़ी होती है।

सूरकाव्य की विवेचना करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल काव्योचित उपमा व रूपक में कहते हैं कि "सूर के कृष्ण और गोपियाँ पक्षियों के समान स्वच्छन्द हैं। वे लोक बन्धनों से जकड़े हुए नहीं दिखाए गए हैं। जिस प्रकार के स्वच्छन्द समाज का स्वप्न अंगरेज कवि शेली देखा करते थे उसी प्रकार का यह समाज सूर ने चित्रित किया है।"[3] पर यहाँ स्वच्छन्दता का अर्थ उच्छृंखलता से लगाना पोएटिक जस्टिस न होगा। स्वच्छन्दता से तात्पर्य यहाँ मन की स्वाभाविक वृत्ति से है। कारण सूरदास के काव्य में, राधा और कृष्ण, गोपियों और गोपी वल्लभ-कृष्ण के प्रेम की उत्पत्ति में रूपलिप्सा और साहचर्य दोनों का योग है।

सूरदास के काव्य में गोपियों की प्रेम भावना, विरह भाव का चित्रण 'सखा-सखी' भाव का चित्रण है। बाल क्रीड़ा के सखा-सखी आगे चलकर यौवन क्रीडा के सखा-सखी हो जाते हैं। गोपियाँ कृष्ण के दिन ब दिन खिलते हुए सौन्दर्य और मनोहर चेष्टाओं को देखकर मुग्ध होती चली जाती हैं और कृष्ण कौमार्यावस्था की स्वाभाविक चपलतावश छेड़छाड़ करना आरम्भ कर देते हैं। गोपियों के प्रेम और कृष्ण के स्वाभाविक सखा भाव का द्वैत सम्बन्ध निम्न पद में दर्शनीय है, जहाँ गोपियाँ निःसंकोच भाव से उद्धव से कह देती हैं -

"लरिकाई को प्रेम, कहौ अलि, कैसे करि कै छूटत ?
कहा कहौं ब्रजनाथ-चरित, अब अंतर गति यों लूटत ॥
चरन कमल की सपथ करति हौं यह संदेस मोहिं बिष सम लागत।
सूरदास मोहि निमिष न बिसरत मोहन मूरति सोवत जागत ॥

सूरदास ने उपर्युक्त पद में गोपिकाओं के प्रेम-भाव की अखण्डता का मनोहारी चित्र प्रस्तुत किया है। मन की अनेकानेक दशाओं का चित्रण तथा

परिवर्तनकारी चित्रण सूर काव्य की विशिष्टता है। एक के बाद एक नवीन प्रसंगों और मौलिक उद्‌भावनाओं की सृष्टि में सूरदास की प्रतिभा अद्वितीय है रस का प्रत्यक्ष और विलक्षण प्रमाण गोपीगीत और गोपी-मुरली संवाद आदि में दिखायी पड़ता है। खण्डिता प्रकरण में नवीन प्रसंगों के माध्यम से कृष्ण के बहुनायकरूप, अनुरागमयी चंद्रावली के मनोभाव तथा गोपियों की दारूण मनोव्यथा का चित्रण हुआ है। गोपियों की छेड़छाड़ कृष्ण तक ही सीमित न रहकर जड़ और निर्जीव मुरली तक पहुँचती है। उन्हें वह 'मुरली' कृष्ण के सम्बन्ध में कभी इठलाती कभी रूठती-चिढ़ाती या प्रेम गर्व करती सी प्रतीत होती है। गोपियाँ कभी सौतिया डाह से, कभी प्रेमजन्य ईर्ष्या से कहती हैं-

(क) "माई री! मुरली अति गर्व काहू बदति नहिं आज
हरि के मुख कमल देखु पायो सुख राज।

x x x

(ख) मुरली तऊ गोपालहिं भावति
सुन, री सखी! जदपि नँद नँदहि नाना भाँति नचावति।
राखति एक पायँ करि अति अधिकार जनावति॥
आपनु पौढि अधर सज्ञा पर कर पल्लव सोपद पलुटावति।
भृकुटि कुटिल कोप नासापुट, हम पर कोपि कँपावति॥

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उपर्युक्त पद संदर्भ में टिप्पणी की है कि 'कृष्ण के प्रेम ने गोपियों में इतनी सजीवता भर दी है कि कृष्ण क्या, कृष्ण की मुरली तक से छेड़छाड़ करने को जी चाहता है। उनका व्यंग्य है प्रस्तुत प्रसंग में कि हवा से लड़ने वाली स्त्रियाँ देखी नहीं तो कम से कम सुनी बहुतों ने होगीं चाहे उनकी जिन्दादिली की कद्र न की हो। (त्रिवेणी पृ० 91)

वास्तव में हर मन की चाहत होती है कि कोई उसे चाहे, पूर्ण समर्पण भाव से। उसका कोई प्रेरक व्यक्तित्व हो, कहीं कोई पूर्णता हो सामीप्य बोध से, इन्द्रियबोध के स्तर पर, रागात्मक बोध की यही तृष्णा है गोपिकाओं के व्यापक भावबोध में। गोपियों के विरह वर्णन में, भ्रमरगीत के अनेकानेक कारूणिक प्रसंगों में नारी जीवन के अतीत्, वर्तमान और भविष्य के रूपक दिखायी पड़ते हैं। भ्रमरगीत में गोपी-उद्धव संवाद में अनेक प्रकार की व्यंग्य-उक्तियों से सामना होता है जहाँ आधुनिक नारी के अस्तित्व भाव का, इन्द्रियबोध के स्तर पर काम केलि का, रतिभाव का जिक्र है। अनेक प्रकार से स्मृतिजन्य सुख-दुःख के बिम्ब और प्रतिबिम्ब उजागर हुए हैं। मध्य युग का निर्गुण-सगुण का विवाद मानो आधुनिक जीवन के कल्पना और यथार्थ का विवाद है, जहाँ कोई आधुनिक नारी कल्पनाजन्य विरह या सुख में निमग्न नहीं रहना चाहेगी। यथा -

"हम तौ कान्ह केलि की भूखी ।
कैसे निरगुन सुनहिं तिहारो बिरहिनि विरह-विदूखी ।
कहिए कहा यहाँ नहिं जानत काहि जोग है जोग ।
पा लागों तुमहीं सो वा पुर बसत बावरे लोग ।।
अंजन, अभरन, चीर, चारू बरू नेकु आप तन कीजै ।
दँड, कमंडल, भस्म अधारी जो जुवतिन को दीजै ।
सूर देखि दृढ़ता गोपिन की उधो यह व्रत पायो ।
कहै कृपानिधि हो कृपाल हो ! प्रेम पढ़न पठायो ।।

सूरदास के काव्य में प्रेम तत्व की ही पुष्टि पायी जाती है । "रतिभाव के तीनों प्रबल और प्रधान रूप भगवद्विषयक रति, वात्सल्य और दाम्पत्य रति - सूर ने लिये हैं । यद्यपि पिछले दोनों प्रकार के रतिभाव भी कृष्णोन्मुख होने के कारण तत्वतः भगवत्प्रेम के अन्तर्भूत ही हैं । पर निरूपण भेद से रचनाविभाग की दृष्टि से अलग रखे गए हैं । इस दृष्टि से विभाग करने से विनय के जितने पद हैं वे भगवद्विषक रति के अन्तर्गत आएँगे, बाललीला के पद वात्सल्य के अन्तर्गत और गोपियों के प्रेम सम्बन्धी पद दाम्पत्य रतिभाव के अन्तर्गत होंगे । हृदय से निकली हुई प्रेम की इन तीनों प्रबल धाराओं से सूर ने बड़ा भारी सागर भरकर तैयार किया है ।" (त्रिवेणी पृ० 95)

सूरदास का काव्य कबीर काव्य से अधिक स्वाभाविक और जायसी के काव्य से अधिक लौकिक है । इसे वात्सल्य और माधुर्य के लिए न तो बालक बनने की आवश्यकता है और न बहुरिया बनने की । जायसी की तरह प्रेम की अलौकिक आभा न दिखाने की आवश्यकता है और न दिल को सींक के कबाब की तरह जलने या जलाने की । सूर के काव्य में यशोदा और गोपियों के हृदय से तादात्म्य के लिए कवि सुलभ सहृदयता का सर्जनात्मक उपयोग है । उनकी प्रेमानुभूति की अथाह गहराई और अपार विविधता का अक्षय स्रोत प्रेम का लौकिक अनुभव है कोई शास्त्र नहीं, न काव्यशास्त्र, न भक्ति शास्त्र"[4] सूर के काव्य में कई ऐसे दुर्लभ प्रेमानुभूति के प्रसंग हैं जिनका शास्त्र में कोई दिग्दर्शन नहीं है । इसीलिए शुक्ल सूरकाव्य की विशेषताओं के बारे में कहते हैं कि वह लोक और वेद दोनों की मर्यादाओं से परे है । पर हम यह कहना चाहेंगे कि वह लोक रंजन की सीमा में जीवन के नैसर्गिक भाव एवं कामनाओं से परे नहीं है ।

सूरदास की गोपियाँ माँसल, स्वस्थ, सुन्दर और मानवीय प्रवृत्ति की नारियाँ प्रतीत होती हैं, मानों वे शील-औन्दर्य और विरह भावनाओं में माइकल एंजेलो या लिओनार्द द विंची की वीनस हो, अथवा रवि वर्मा की पेण्टिंग्स में वर्णित सुन्दर देहाकार की गोकुल-नारियाँ । वियोग भाव से वे ईर्ष्या, उलाहने

उपालम्भ भाव से अपने नीरस उजड़े हुए जीवन से मेल न रख पाने वाले हरे-भरे पेड़ों को कोसती हैं -

"मधुवन ! तुम कत रहत हरे ?
विरह वियोग श्यामसुन्दर के ठाढे क्यों न जरे ?
तुम हो निलज, लाज नहिं तुमको, फिर सिर पुहुप धरे ।"

गोपिकाओं को विरह की अतिशयता से रात साँपिन सी लग रही है । साँपिन की पीठ काली और पेट सफेद होता है । ऐसा प्रसिद्ध है किम्वदन्तियों में कि वह काटकर उलट जाती है, उसका सफेद भाग ऊपर हो जाता है । बरसात की अँधेरी रातों में कभी-कभी बादलों के हट जाने से जो श्वेत चाँदनी फैल जाती है तो वह ऐसी ही लगती है -

पिया बिनु साँपिनि कारी राति ।
कबहुँ जामिनी होति जुन्हैया डसि उलटि ह्वै जाति ।।

सूरदास की गोपियों ने जीवन के स्वाभाविक चित्र रचे हैं अपनी विरहावस्था के । वे कल्पना की ऊँची रहस्यवादी उड़ान न भरके 'स्वप्न-सुख' की चाहना रखती हैं । वर्णन है कि "कोई गोपिका या राधा स्वप्न में भी कृष्ण के दर्शनों का सुख प्राप्त कर रही थी कि उसकी नींद उचट गई । इस व्यापार के मेल में कैसा प्रकृति व्यापी और गूढ़ व्यापार सूर ने रखा है ।"[5] पद मुलाहिजा होगा -

हमको सपनेहु में सोच ।
जा दिन ते बिछुरे नंद नंदन ता दिन ते यह पोच ।
मनौ गोपाल आये मेरे घर, हँसि करि भुजा गही ।।
कहा करौ बैरिनि भई निदिया, निमिष न और रही ।।

गोपियों के चरित्र निर्माण में सूरदास की वैष्णव भावना, प्रेमानुभूति और सृजन शक्ति का कलात्मक रूप अभिव्यक्त हुआ है । बकौल मैनेजर पाण्डेय के सूरदास ने गोपियों के चरित्र का विकास दो स्तरों पर किया है - (1) गोपियों का सामूहिक शील और (2) व्यक्तिगतशील । व्यक्तित्व और आचरण सम्बन्धी उनकी अपनी विशेषताएँ हैं । उनके पृथक नाम, रूप और स्वतन्त्र अस्तित्व भी है । चंद्रावली, ललिता, प्रमुदा और शीला आदि अनेक गोपिकाओं के चित्रण सूरसागर में उपलब्ध है । गोपियाँ स्नेहशीला भी है और अनुरागवती भी । ब्रज की वयस्क गोपियाँ सब की सब स्नेहशीला हैं । ये यशोदा के साथ वात्सल्यानुभूति करती है ।

अनुरागवती गोपियाँ दो प्रकार की हैं (क) किशोरी कुमारियाँ और (ख) प्रौढ़ा ब्रजांगनाएँ । कृष्ण कभी दही-मंथन करने वाली गोपी के सौन्दर्य पर मुग्ध होते हैं तो कभी चीर हरण लीला में प्रेम भाव परिपुष्ट पाते हैं । सूरदास ने

विभिन्न लीला-प्रसंगों में गोपियों के विभिन्न रूपों का वर्णन किया है। राधा की सखियों के रूप में गोपिकाओं के नाम दर्शनीय है -

"कहि राधा किन हार चुरायौ।
ब्रज जुवतिनि सबहिन मैं जानति लै लै नाम बताओ।
स्यामा, कामा, चतुरा, नवला, प्रमदा, सुमदा नारि।
सुखमा, सीला, अवधा, नंदा, वृंदा, जमुना सारि।
कमला, तारा, विमला, चंदा, चंद्रावलि, सुकुमारि।
अमला, अवला, कंजा, मुकुता, रीरा, नीला प्यारि।
सुमना, बहुला, चंपा, जुहिला, ताना, भाना, भाउ।
प्रेमा, दामा, रूपा,हंसा,रंगा, हरषा जाउ।
दुर्वा, रंभा,कृष्णा, ध्याना, नैना, मैना रूप।
रत्ना कुसुमा, मोहा, करुना, ललना, लभाऽनुप।"[6]

सूरदास ने अनेक गोपियों के नाम पुराणों से लिए हैं। लेकिन कुछ नाम उनके स्वयं के अपने हैं जो अन्यत्र नहीं है। सूरदास ने खण्डिता और बसंतलीला प्रकरण में अनेक गोपियों के प्रेम वैशिष्ट्य का निरूपण किया है, जिनमें ललिता, शीला, चंद्रावली, उखमा, वृंदा, प्रमुदा तथा कुमुदा आदि मुख्य हैं। ये सभी गोपियाँ प्रेमभाव में सहभाग-माज स्तर का निर्वाह करती हैं, इनके शील की स्वतन्त्र रूप रेखाएँ भी वर्णित हुई हैं।

सूरदास की गोपिकाएँ साक्षात् प्रेम स्वरूपा हैं। उनका प्रेम पक्षियों की भाँति स्वच्छन्द है। प्रकृति के उन्मुक्त परिवेश यमुना के तट पर, करील-कुंज, वनमार्ग में उनकी प्रेमलीला चलती है। इसीलिए उनका प्रेम भी सहज प्राकृत और बंधनमुक्त है। गोपियों के उद्दाम प्रेमावेग के लोक और वेद की मर्यादा यमुना के कूल बनकर रह जाते हैं। गोपियाँ प्रेम में केवल अपने मन की गति और प्रिय की इच्छा को ही महत्त्व देती है। वे बाहरी प्रत्येक बन्धनों का तिरस्कार करती है। वे वियोग में अपनी खीझ भी रागात्मक सम्बन्धों के आधार पर व्यक्त करती हैं - जहाँ वे सरिता रूप में कृष्ण रूपी सागर से मिलन की रूपक कामना व्यक्त करती है -

तेरो बुरो न कोऊ माने।
रस की बात मधुप नीरस, सुनु रसिक होत तो जानै॥
दादुर बसै निकट कमलन के जन्म न रस पहिचानै।
अलि अनुराग उड़न मन बांध्यो कहे सुनत नहिं कानै॥
सरिता चलै मिलन सागर को कूल मूल द्रुम भानै।
कायर बकै, लोह ते भाजै लरै जो सूर बखानै॥

प्रेम रस में मग्न गोपियों की स्वच्छन्द प्रेमलीला झूलन और वसंतलीला में हुई है। गोपियाँ फाग में सज-धज कर होली खेलती हैं। ब्रजवासियों की स्वच्छन्द होली और बरसाने की गालियाँ आज भी प्रसिद्ध हैं। "सूरदास ने अपने समय के जनजीवन में प्रचलित वसन्तोत्सव को ही कृष्ण और गोपियों के वसन्तोत्सव में उपस्थित किया है। यह लोक जीवन के यथार्थ की कलात्मक अभिव्यक्ति है। फाग खेलने में गोपियों का बाह्याभ्यन्तर राग रंजित दिखायी पड़ता है। इस होली में रंगराची, बावरी और यौवन गर्वीली गोपियों की स्वच्छन्द प्रवृत्ति का सूरदास ने वर्णन किया है।[7]

गोपियों के शील और आचरण में रागानुराग भक्ति का चरम उत्कर्ष दिखाई पड़ता है। सभी गोपियों में कृष्ण के प्रति आसक्ति और अनुरागभाव है। स्नेहशीला गोपियों में वात्सल्याभक्ति है, कुमारियों में कांतासक्ति, ब्रजांगनाओं में तन्मयासक्ति और कृष्ण के मथुरा-प्रवास के दौरान सभी गोपियों में विरहासक्ति का भाव दिखलाई पड़ता है। गोपियों के चरित्र की आध्यात्मिक विवेचना हुई है कि प्रतीकात्मक अर्थ में कृष्ण आत्मा है और गोपियाँ उनकी विभिन्न वृत्तियाँ हैं। सूरदास ने भी गोपियों को भागवत के अनुसरण पर श्रुतिरूपा कहा है, जिसकी विवेचना करना हमारा अभीष्ट अर्थ नहीं है।

रासलीला गोपियों के प्रेमभाव की पूर्णावस्था है। वही गोपी कृष्ण-लीला का चरमोत्कर्ष है। पनघटलीला में सूरदास की स्वच्छन्द वृत्ति अधिक रमी है, क्योंकि इसमें सहज, स्वाभाविक, प्रेम का विकास है। यमुना के तट पर प्रकृति के उन्मुक्त परिवेश में गोपियों के साथ कृष्ण की रस केलि अत्यन्त मनोहर प्रतीत होती है। गगरी फोड़ देना, रास्ता रोक लेना, गोपियों का खींझना, रूठना, मान-मनौवल हमारे अतीत के भावपूर्ण चित्र हैं। पनघटलीला में ही गोपियाँ प्रेमसिन्धु में निमग्न हो जाती हैं। कृष्ण के प्रेमरंग में गोपियों का अन्तर रंग जाता है। दान-लीला में कृष्ण और गोपियों के बीच गोरस (इंद्रिय रस और दही) के लेन-देन की लीला परिव्याप्त है। यह गोरस का जीवनोत्सव है, प्रेम का लीलाभाव है, गोपियाँ गोरस (दही) देने को तत्पर हैं और कृष्ण गोरस (इन्द्रिय रस-रति) चाहते हैं। गोपियाँ कहती हैं- "जो रस चाहौ सो रस नाहीं, गोरस पियो अघाई। (पद संख्या 2080)[8] गोपियाँ केवल दही देना चाहती हैं और कृष्ण अपनी रागात्मक कुटिलता से कहते हैं कि 'लय हौं दान सब अंग-अंग को।' वे सर्वस्व समर्पण, सर्वस्व दान राग-रति और केलिभाव स्वच्छन्द रूप से चाहते हैं।

गोपियाँ प्रेमदान की पूर्णता हेतु यमुना तट पर उपस्थित होती हैं, सम्पूर्ण श्रृंगार श्रद्धा और समर्पण भाव से, रस नागर कृष्ण भी अपने सखाओं के साथ वहाँ प्रतीक्षारत हैं। गोपियाँ लोक-लाज, कुल-मर्यादा भूलकर सरिता की तरह कृष्ण-सागर में अपना गोरस उन्मुक्त होकर लुटाती हैं और कृष्ण गोरस का आनंद लेते हैं। (सन्दर्भ पद सं० 2246) प्रेम विवश गोपियाँ गोरस के बदले

हरिरस बेचने लगती हैं (पद 2253) बकौल मैनेजर पाण्डेय के दानलीला की पूर्ण राधा-कृष्ण की रस केलि में हुयी है । लोक, कुल और समाज के बंधनों से मुक्त गोपियों का प्रेम सामन्ती समाज के लिए एक चुनौती है । गोपियों का प्रेम सामन्ती व्यवस्था के सामाजिक बन्धनों को तोड़कर प्रेम के मानवीय रूप की स्थापना करने वाला है । किस्सा कोताह यह है कि "सूरदास ने राग और वैराग्य के संघर्ष में जीवन के रागात्मक पक्ष को महत्त्व दिया है, निवृत्ति मार्ग के ऊपर प्रवृत्ति मार्ग को प्रतिष्ठित किया है । उन्होंने मानवीय जीवन के भाव, विचार और कर्म की एकता की महता स्थापित कर जीवन की समग्रता का काव्य रचा है ।"[9] सूरदास मानव जीवन की सहजता, स्वतन्त्रता, विविधता और पूर्णता के गायक हैं । गोपियों के व्यक्तित्व और व्यवहार से मानवीय प्रेम की सहजता, स्वच्छन्दता और उदात्तता सिद्ध होती है, इसलिए सूरदास को गोपियों से गहरी सहानुभूति है ।

गोपियों के लिए अपने प्रेम के आराध्य सखा और मित्र कृष्ण के प्रति अनन्य आस्था भाव है, विश्वास है वह उनके लिए सर्वस्व है- देह, मन और चित्त के स्तर पर । वे कहती हैं-

हमारे हरि हारिल की लकरी
मन वच क्रम नंद नंदन ओं उर यह दृढ़ करि पकरि ।।
जागत सोवत, सपने सौंतुख कान्ह कान्ह जकरी ।
सुनतहिं जोग लगत ऐसो अलि ! ज्यों करुई ककरी ।
सोई व्याधि हमैं ले आए देखी सुनी न करी ।
यह तौं सूर तिन्हैं ले दीजै जिनके मन चकरी ।।

गोपियों के हास-परिहास, व्यंग्य, वक्रता बोध को भला कौन विस्मृत कर सकता है । जहाँ वे उद्धव के ज्ञान, तर्क और निर्गुण भाव को तिरस्कृत कर देती है - "आयो घोष बड़ो व्यापारी । लादि खेप गुन ज्ञान-जोग की ब्रज में आय उतारी।। फाटक देकर हाटक माँगत मारै निपट सुधारी । आधुनिक भावबोध के व्यक्ति या पाठक के लिए यह अचरज की, कौतुक भाव की वार्ता हो सकती है कि "गोपियों के गोपाल (उनसे) केवल दो चार कोस दूर के एक नगर में राजसुख भोग रहे थे । सूर का वियोग वर्णन केवल वियोग वर्णन के लिए है । (त्रिवेणी पृ०78) पर यह मन की प्रतीति है । प्रेमभाव में मान-मनौवल, रूठने-मनाने का अपना अंदाज होता है । राधा और कृष्ण का सखी-सखा भाव, गोपियों और गोपी वल्लभ का रास भाव, दानलीला, पनघट लीला भाव हमारे अवचेतन में, बसा हुआ वह वैयक्तिक मिथकीय भाव है जिनसे हम विलग नहीं रह सकते हैं । भले ही अस्तित्ववादी, मनोविश्लेषण और प्रगतिशील भावबोध से उसे नास्टेलिजक भाव या अतीत की विरासत की मूल्यवान धरोहर मान लें।

वास्तव में सूरदास की गोपियों और आधुनिक नारी के भावबोध में 'ऐतिहासिक-सांस्कृतिक आधार' का ही अन्तर है, मध्ययुगीन दौर में सूरदास अगर सगुण-निर्गुण के द्वन्द्व से परे नहीं जा सके हैं तो आज की आधुनिक नारी अपने प्रेमभाव में अस्तित्ववादी-मनोविश्लेषणवादी 'अस्मिता' के आधार भाव से परे नहीं जा सकती है । सूरसागर में अभिव्यक्त राधा-कृष्ण की प्रेमलीला, गोपीवल्लभ की रासलीला, गोपियों का विप्रलम्भ भाव, भ्रमरगीतसार का मनोलोक शास्त्र सम्मत भी है और लोक सम्मत भी । पर आज की आधुनिक नारी न तो परकीया रहना चाहेगी और न ही आँगन चौबारे की परित्यक्ता तुलसी। वह मात्र गोपियों के अनुरक्त भाव में, किसी भी सूरत में अपना स्वत्वबोध नहीं पा सकेगी ।

गोपियों के प्रेमभाव की प्रतीक-पात्र राधा-नायिका भी धर्मवीर भारती के यहाँ आधुनिक मना-अस्तित्ववादी नारी के रूप में केवल केलि-प्रसंगों में संगिनी बनकर रहना नहीं चाहती है, वह तन्मयता के क्षणों की सहयात्री है पर साथ ही वह इतिहास-निर्माण में जीवन संघर्षी साथिन भी बनना चाहती है । वह रिक्तता बोध में, अभाव में भी अस्तित्व की सार्थकता के सन्दर्भ और सामाजिक सरोकार तलाश कर लेती है । आज की आधुनिक नारी का, नारी विमर्श के दौर में- इतिहास निर्माण में उसका अपना स्वत्व बोध एवं स्व कौशल भी है, जीवन साहचर्य से उबरकर उदात्त-संघर्ष भूमि पर -

"मेरी वेणी में अग्नि पुष्प गूँथने वाले -
तुम्हारी उँगलियाँ
अब इतिहास में अर्थ क्यों नहीं गूँथती ?[10]

सप्तपदी के बंधन, वैवाहिक जीवन जीने की रस्म हमारे भारतवर्ष के विभिन्न अंचलों में प्रचलित है । सूरदास ने राधा और कृष्ण, गोपियों और गोपी वल्लभ के माध्यम से रास-लीला, दान-लीला,पनघट-लीला एवं चीर-हरण का जो कौतुकमय यूटोपिया रचा है अपने मध्ययुगीन दौर में, "वह आज के युग में बकौल शिवकुमार मिश्र के एक Aesthetic pleasure है सौन्दर्य बोधी सुख शंसा है ।"[11] पर इक्कीसवीं सदी में आधुनिक नारी अपना स्वतन्त्र अस्तित्व चाहती है, निर्णय लेने की स्वतन्त्रता और स्वत्वबोध की अभिशंसा भी । वह मात्र परकीया, उपजीवी या प्रेमिका मात्र बनकर रहना नहीं चाहती ।

सूरदास की गोपियाँ एक सीमा तक ही नारी-विमर्श का हिस्सा बन पायेगी । मध्यकालीन युग की सीमाओं में, जहाँ वह अशिक्षा, सामाजिक बन्धन और सामन्ती उत्पीड़न में जी रही थी । स्वच्छन्द पक्षियों के समान विचरने और स्वयं की तुष्टि में, मान-मनौवल वाली गोपिकाएँ नारी-सम्मान की पात्रा हैं और हमारी सांस्कृतिक धरोहर भी ।

कोई भी साहित्यिक कलाकृति अपने इतिहास बोध, युगचेतना और समाज सापेक्ष्य सन्दर्भों से जुड़कर महत्त्वपूर्ण बनती है । पर कला कृति में अभिधापरक चित्रण हो यह कला सृजना की आवश्यक शर्त नहीं है । कला की अपनी स्वायत्तता होती है, वह कभी-कभी अतीतकाल के पौराणिक प्रतीक एवं मिथक सन्दर्भों को अपनाकर अपने युग एवं समाज के लिए संदेशवाहक एवं सम्प्रेषणीय बनती है । सूरसागर का जीवनालोक, अनुभवालोक और रागात्मक बोध - वस्तुतः व्यष्टि और समष्टि स्तर पर एक कालजयी कृति है वह अतीत के प्रसंगों को वर्तमान में मानसिक एवं रागात्मक वृत्तियों के साथ जोड़कर उन्हें चित्रित करने वाली विलक्षण कृति है जिसे भगवत-भक्ति, वात्सल्य बोध और रागात्मक संवेदना के स्तर पर देखना अतीत के ऐतिहासिक व आंस्कृतिक मनोलोक को देखना होगा । पर सूरदास का काव्यजगत हमारे आधुनिक जीवन का काव्य जगत एवं मनोलोक बन जाये, ऐसा कहना न तो Poetic justice है न ही हमारे सांस्कृतिक ऐतिहासिक आधार बदल जाने का अहसास है ।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. मैनेजर पाण्डेय : भक्ति आन्दोलन और सूरदास का काव्य पृ० 82
2. रमेश कुन्तल मेघ : क्योंकि समय एक शब्द है, पृ० 34
3. रामचन्द्र शुक्ल : त्रिवेणी पृ० 86
4. मैनेजर पाण्डेय : भक्ति आन्दोलन और सूरदास का काव्य, पृ० 39
5. रामचन्द्र शुक्ल : त्रिवेणी, पृ० 102
6. सूरदास : सूरसागर, पद - 2626
7. मैनेजर पाण्डेय : वही, पृ० 145
8. सूरदास : सूरसागर, पद संख्या 2080
9. मैनेजर पाण्डेय : वही, पृ० 89
10. धर्मवीर भारती : कनुप्रिया , पृ० 84
11. शिवकुमार मिश्र : भक्ति काव्य के कवियों का पुनर्मूल्यांकन राष्ट्रीय संगोष्ठी चौगुले कालेज मडगाँव दिनांक 18 फरवरी-02